शिक्षा का उद्देश्य

□ **डॉ० प्रभु शर्मा**

(क० व्याख्याता, हिन्दी, रा० उ० मा० विद्यालय, आमेट, उदयपुर)

किसी भी कार्य के उद्देश्यों में समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। शिक्षा को भी इसका अपवाद नहीं माना जा सकता। इसमें भी समय, स्थान एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास रहा है। यूनानी दार्शनिकों ने शिक्षा के अन्तर्गत नैतिक, सामाजिक और बौद्धिक उद्देश्यों पर बल दिया है। प्राचीन रोम में शिक्षा का उद्देश्य राज्य का कल्याण रहा है। मध्यकालीन योरोप में शिक्षा का उद्देश्य मृत्यु के बाद जीवन की तैयारी रहा है। इसके विपरीत आधुनिक यूरोप शिक्षा के इस उद्देश्य में तनिक विश्वास नहीं करता। परतन्त्र भारत में मैकाले ने शिक्षा का उद्देश्य राज्य के सेवक का निर्माण बना दिया था। उद्देश्यों में परिवर्तन समाज विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप होता है। प्राचीन भारतीय समाज में क्षत्रिय वर्ण से सदैव रक्षा की अपेक्षा की गई है—'क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़:' (रघुवंश)। अत: क्षत्रियों का समस्त जीवन-दर्शन ही युद्धमण्डित रहा है और तदनुरूप ही उनकी शिक्षा व्यवस्था रही है जिसमें शस्त्र-संचालन को प्रमुखता प्राप्त थी। इसी प्रकार ब्राह्मणों की शिक्षा में भी धर्म की व्याख्या हेतु वेद एवं पुराणों के अध्ययन पर बल दिया जाता रहा है। सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा के परिवर्तन को समझने हेतु अमेरिका का उदाहरण देना उचित रहेगा। प्रथम विश्वयुद्ध के समय थ्योडोर रूजवेल्ट (Theodore Roosevelt) ने शिक्षा के उद्देश्य बताये थे—शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक और नैतिक प्रशिक्षण देना; जबकि वर्तमान में वहां शिक्षा का उद्देश्य है—व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करना, उसे अवकाश का सदुपयोग करने के लिए तैयार करना और उसे भावी नागरिक और उत्पादक बनाना।

शिक्षा समाज की आधार-शिला है अत: शिक्षा का औचित्य तभी है जबकि उसके उद्देश्य समाज के अनुकूल हों। सामाजिक अनुकूलता से तात्पर्य यही है कि वह समाज के 'सद्' एवं 'सम्पन्न' पक्ष को यथावत् अथवा उसे श्रेष्ठतर बनाते हुए 'असद्' एवं 'विपन्न' या अभाव पक्ष को सद् एवं सम्पन्न में परिवर्तित करने का प्रयास करे। प्राचीन आदर्शों को प्रस्तुत करना एवं वर्तमान समाज के अनुरूप उनकी शिक्षा प्रदान करना समाज के सद् पक्ष को बनाये रखने वाला पहलू है जबकि नैतिक शिक्षा देना समाज में व्याप्त असद् पक्ष को सद् में परिवर्तित करने का प्रयास है। सद् एवं असद् के समानान्तर ही है—सम्पन्नता एवं विपन्नता का पहलू। यह पहलू भौतिक पक्ष से सम्बद्ध है। इसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य होगा—समाज-विशेष की सम्पन्नता को बनाये हुए अथवा उसकी सम्पन्नता में वृद्धि करते हुए उसके अभाव या विपन्नता को कम करने का प्रयास करना। दूसरे रूप में इन पक्षों को संस्कृति एवं सभ्यता के पक्ष से भी देखा जा सकता है—सद् को बनाये रखना अथवा श्रेष्ठतर बनाना संस्कृति-पक्ष है; जबकि भौतिक दृष्टि से सम्पन्नता का पक्ष सभ्यता-पक्ष है। वस्तुत: संस्कृति और सभ्यता मनुष्य के अन्त: और बाह्य पहलू हैं। अत: सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है और संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। समय एवं परिस्थिति के अनुरूप सद् का ग्रहण और असद् का परित्याग ही संस्कृति का नियम रहा है। अत: संस्कृति वह सूक्ष्म परिवर्तनशील प्रक्रिया है जो युगीन सर्वो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्कृष्ट तत्त्वों को ग्रहण कर अतिरिक्त एवं अनपेक्षित तत्त्वों को त्यागती हुई निरन्तर सम्वर्द्धनशील रहती है। शिक्षा में भी यही प्रक्रिया होनी चाहिए—'सार सार को गहि लहे, थोथा देहि उड़ाय' अर्थात् सद् का ग्रहण एवं असद् का परित्याग। समाज-विशेष की भौतिक परिस्थितियों के अनुरूप उसकी सम्पन्नता को बनाये रखना एवं विपन्नता अथवा अभाव को कम करने का उद्देश्य भौतिक पक्ष है जिसे सभ्यता-पक्ष भी कहा जा सकता है। इसमें समाज-विशेष की प्रौद्योगिक प्रगति, आर्थिक दशाएँ आदि बिन्दु सन्निहित हैं।

संस्कृति-पक्ष सार्वभौमिक मूल्यों एवं आदर्शों को लेकर चलता है जिसमें व्यक्ति के सामान्य विकास, उसकी संस्कृति की सुरक्षा एवं प्रगति पर बल होता है। अतः इसे आदर्श आधार भी कहा जा सकता है। सभ्यता या भौतिक पक्ष में सार्वभौमिक आधार न होकर समाज-विशेष की भौतिक परिस्थितियों का आधार होता है। समाज-विशेष की वस्तुस्थिति पर आधारित होने से इसे यथार्थवादी आधार भी कहा जा सकता है।

भारत धर्म-प्रधान देश रहा है। यहाँ भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को ही अधिक बल मिला है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत का भौतिक पक्ष दुर्बल रहा है। यदि ऐसा होता तो भारत कभी 'सोने की चिड़िया' नहीं होता। किन्तु भौतिक पक्ष पर भी नियन्त्रण आध्यात्मिक पक्ष का ही रहा है। अतः यहाँ की शिक्षा में चारित्रिक गुणों के विकास पर ही अधिक बल दिया गया है। धर्म का अनुसरण और तदनुरूप जीवन-यापन ही लक्ष्य रहा है। भारतीय समाज में जीवन को व्यवस्थित करने हेतु आश्रम व्यवस्था एवं समाज को व्यवस्थित करने हेतु वर्ण व्यवस्था थी। समाज के विभिन्न वर्णों एवं जीवन की विविध अवस्थाओं का सुन्दर सामंजस्य वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था के रूप में था। किन्तु आज का भारत प्राचीन भारत से बहुत कुछ बदला हुआ है अतः आज के युग में वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था कल्पना के बिन्दु हैं। समाज एवं समय के परिवर्तन के अनुसार यह अवश्यंभावी ही था।

पुरातन एवं नवीन का संघर्ष एक शाश्वत तथ्य है। यद्यपि भारत में पुरातन का आग्रह अधिक रहा है किन्तु वर्तमान भारत में वह आग्रह भी शिथिल पड़ गया है। एक लम्बी अवधि से पुरातन के आग्रह में सिमटे भारतीय युवक को पाश्चात्य समाज एवं संस्कृति की वैचारिक और आचारिक स्वतन्त्रता न केवल प्रभावित करती है वरन् उन्हें वह आदर्श-सी जान पड़ती है। फलतः पाश्चात्य भौतिक चकाचौंध से प्रभावित तरुण वर्ग को भारतीय पुरातन व्यर्थ लगता है और वह उसकी सहज उपेक्षा कर देता है। किसी देश का इससे बढ़कर क्या दुर्भाग्य होगा कि उसके युवक के व्यक्तित्व का निर्माण विदेशी संस्कारों से हो।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में भौतिक सम्पन्नता को बढ़ाने हेतु तो प्रयास हुए पर वैचारिक या आत्मिक क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति नहीं हुई। भारतीय पुरातन में से वर्तमान समाज की दृष्टि से अतिरिक्त एवं अनपेक्षित मान्यताओं, रूढ़ियों और व्यवस्थाओं को हटाया तो गया पर इनके स्थान पर पूरक की प्रतिष्ठा नहीं हो पायी है। इससे भौतिक और वैचारिक क्षेत्र में अत्यधिक असुन्तलन हो गया। स्पष्ट है कि यह असन्तुलन वैचारिक या आत्मिक पक्ष के अभाव से है। इसी से जीवन में निराशा और असन्तोष व्याप्त हो गया।

शिक्षा के सम्मुख सांस्कृतिक और भौतिक दोनों ही पक्ष हैं। भारत का अतीत सांस्कृतिक प्रतिभा से सदैव गौरवान्वित रहा है। वर्तमान में वह प्रतिभा पाश्चात्य भौतिक चकचौंध से विलीन होती जा रही है। दूसरी ओर आधुनिक भौतिक युग में भारत को भी अपनी भौतिक प्रगति करनी है। सांस्कृतिक पक्ष के अन्तर्गत प्राचीन आदर्शों या वैचारिक मूल्यों को वर्तमान समाज के अनुरूप तथा भौतिक पक्ष को वर्तमान संसार के अनुरूप ढालना है। संक्षेप में भारतीय शिक्षा को अतीतकालीन सांस्कृतिक गरिमायुक्त भारत और वर्तमान भौतिकता के चरम की ओर अग्रेसित संसार के मध्य सेतुबन्धन करना है, उनका सामंजस्य करना है। यही भारतीय शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हुमायूँ कबीर के विचार भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है—

'भारत में शिक्षा के द्वारा लोकतन्त्रीय चेतना, वैज्ञानिक खोज और दार्शनिक सहिष्णुता का निर्माण किया जाना चाहिये। केवल तभी हम उन परम्पराओं के उचित उत्तराधिकारी होंगे जिनका निर्माण देश के अतीत में हुआ है। केवल तभी हम उस आधुनिक विरासत में अपना भाग पाने के अधिकारी होंगे, जो विश्व के समस्त राष्ट्रों की विरासत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को एक करने का प्रयत्न करती है।" शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में भी इसी तथ्य की पुष्टि है—"भारत में विज्ञान तथा आत्मा सम्बन्धी मूल्यों को निकट एवं संगति में लाने का प्रयास करना चाहिए तथा अन्त में जाकर एक ऐसे समाज के उदय के लिए मार्ग तैयार करना चाहिए जो सम्पूर्ण मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा, न कि उसके व्यक्तित्व के किसी खण्ड विशेष की।"

मात्र भौतिक उन्नति उस पुष्प की भांति है जो सुन्दर तो है पर गन्धरहित है। उसकी पूर्णता के लिए सुन्दरता एवं गन्ध दोनों ही अनिवार्य हैं। अतः भौतिक और आत्मिक उन्नति क्रमशः पुष्प और उसकी गन्ध की भाँति है जो कि मिलकर ही पूर्णता को प्राप्त होती है। शिक्षा में इसी भौतिक और आत्मिक संतुलन को बनाये रखना है। शस्त्रास्त्रों का निर्माण करने वाले मानव की आत्मा में भी अहिंसा, करुणा और मानव-प्रेम की सरिता प्रवाहित होनी चाहिए और आत्मोन्नति में लीन मानस में भी भौतिक उन्नति के प्रति उपेक्षा का अभाव। डॉ० एस० राधाकृष्णन के शब्दों में—"विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस युग में हमें यह याद रखना चाहिए कि जीवन का वृक्ष, लोहे के ढाँचे से बिल्कुल भिन्न है। यदि हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके निर्धनता को दूर करना चाहते हैं तो ललित कलाओं द्वारा मस्तिष्क की हीनता को भी दूर किया जाना चाहिए। केवल भौतिक दरिद्रता ही दुःख का कारण नहीं है। हमें समाज के शक्तिशाली हितों को ही नहीं वरन् मानव-हितों को भी सन्तुष्ट करना चाहिए, सौन्दर्यात्मक और आध्यात्मिक उत्कर्ष पूर्ण मानव के निर्माण में योग देता है।"

यह अपेक्षा की जाती रही है कि शिक्षा व्यक्तियों को समाज के रचनात्मक सदस्यों के रूप में तैयार करे। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने भी इसी तथ्य को स्पष्ट किया है—शिक्षा-व्यवस्था को आदतों, दृष्टिकोणों और चरित्र के गुणों के विकास में योग देना पड़ेगा जिससे कि नागरिक जनतन्त्रीय नागरिकता के दायित्वों का योग्यता से निर्वाह कर सकें और उन ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का विरोध कर सकें, जो राष्ट्रीय धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण के विकास में बाधक है। आज छात्र वर्ग में ध्वंसात्मक प्रवृत्ति फैली हुई है। अपने असन्तोष तथा भावी जीवन के प्रति हताशा आदि से प्रेरित हो छात्र ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ अपनाते हैं। इसका कारण आत्मिक विकास का अभाव, आत्मा की निर्बलता, विवेकहीनता आदि हैं। प्लेटो के अनुसार विवेक का तिरस्कार करने की प्रवृत्ति मनुष्य का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण अभिशाप है। लेकिन भारतीय युवा वर्ग इसी अभिशाप से ग्रस्त है। छात्र विषयगत ज्ञान तो प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् भौतिक ज्ञान तो प्राप्त कर लेते हैं पर आत्मिक उत्थान नहीं कर पाते। क्यों नहीं कर पाते? क्योंकि उनके पाठ्यक्रम में ऐसा कुछ नहीं है। उनके वातावरण में ऐसा कुछ नही है। इन्जीनियर आदि की शिक्षा का मन एव आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। मात्र विषयगत ज्ञान प्राप्त करते-करते उसकी भौतिक भूख इतनी बढ़ जाती है कि मानवीयता के मूल्य उसकी कल्पना में भी नहीं आते, 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।' यही कारण है कि अच्छी नौकरियाँ नहीं मिल पाती हैं तो असन्तुष्ट छात्रों द्वारा विश्वविद्यालयों की इमारतों पर पत्थर फेंके जाते हैं, शीशे फोड़े जाते हैं, कारें जलाई जाती हैं, बाजार बन्द किये जाते हैं, हड़तालें की जाती हैं। मात्र विषयगत ज्ञान को प्राप्त किये उन छात्रों के मानस में यह तथ्य कैसे उभरे कि बाजार बन्द से उन मजदूरों का क्या होगा जो आज दिन भर बाजार में इधर-उधर माल ढोकर उससे प्राप्त मजदूरी से शाम को पेट भरेंगे, नहीं तो उन्हें भूखा ही सोना पड़ेगा। कुल्फी बेचने वाले की सारी कमाई मारी जायगी। भौतिक उन्नति से आकर्षित हो कार खरीदने की लालसा रखने वाले डाक्टर से कैसे अपेक्षा की जा सकती है कि वह गरीबों से कम फीस ले। आज के युग में व्यक्ति में मानवीय गुणों के होने पर आश्चर्य होता है, नहीं होने पर कोई असामान्य बात नहीं। आज का वातावरण तो भौतिक लोभ के नौ नहीं हजारों द्वारों का पींजरा बना हुआ है जिनमें मानवीय गुणोंरूपी पवन-पक्षी के 'रहिबे को अचरज है, गये अचंभा कौन'?

मानवीय मूल्यो के समाज से विघटन के अनेक पक्ष हो सकते हैं पर शिक्षा में इन तत्त्वों का समुचित समावेश न होना एक प्रमुख कारण है। इसके अभाव में छात्र यदि विध्वंसात्मक दृष्टिकोण अपनाता है तो उसका कोई दोष नहीं। शिक्षा को डाक्टर की प्रतिमाएं नहीं गढ़नी है उनमें मानव-पीड़ाओं से स्पन्दित आत्मा का भी प्रवेश कराना है। प्रतिभाओं रूपी पुष्पों को मानवीय गुणों रूपी सुगन्ध से युक्त करना है। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org